O Year: 2 0 Issue: 5 (Part-II) 0 August 2017 0 ISSN : 2456·0898

GLOBAL THOUGHT

ग्लोबल थॉट

(MULTI DISCIPLINE BI-L1NGUAL RESEARCH JOURNAL)

(An International Refereed Quarterly Research Journal)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

Special Note :

Anti national thoughts are not acceptable.

Patron:

Prof. M.M. **Agrawal**

(Former Dean, Arts Faculty & H.O.D. Sanskrit, University of Delhi, Delhi)

Prol. D.S. **Chauhan**

(Former H.O.D. Sanskrit, Magadh University, Bodhgaya, Bihar)

स्वामी/मुद्रक/प्रकाशक रूपेश कुमार चौहान द्वारा 47, ए-3 ब्लॉक, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, (नजदीक संकट मोचन मंदिर), पी.एस. नजफगढ़, दिल्ली से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4 ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली में मुद्रित।

सम्पादक रूपेश कुमार चौहान

Ph. 09555222747,09540468787,7011805809

F

अनुक्रमणिका

l3ditorial-- 7
EncounteringSecurityAHEALTHSCARE ------ 8
Nishant Pradhan
भोजपुरी के संस्कार गीतों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ....•................ **13**
डॉ. कुमारी अनीता
खाद्य अपव्यय का पर्यावरण पर प्रभाव 15
हरगोविन्द खरेरा
स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हिन्दी **का विकास**..... 19
उमेश कुमार
हिंदी साहित्य में दलित जागृति 23
लक्ष्मी बंसल
Buddhism Meditation in Practicums :
A Based on Pali Literature --------------------27
Harish Kumar Baluja
4ण्डिता क्षमाराव कृत तुकारामचरित काव्य का विवेचनात्मक अध्ययन 34
डॉ. हेमलता
The Noble Eightfold Middle Path-
Self Mortification and Hedonism --------------38
Parul Sood
सामाजिकरूपेण शैक्षिकरूपेण कृते शिक्षा 43
दयानिधि तिवारी
Kashmiriyat and Wahhabism:
A Tale of Contrasting Ideologies --------------49
Nishant Pradhan
Pluralism and Secularism in Indian
Democracy ---------------------------------------54
Rakshit Charan
हास्य और व्यंग्य का शास्त्रीय विवेचन 60
डॉ. उर्विजा शर्मा
मातृदेवियों की अवधारणा **का सैद्धान्तिक** आधार ... 66
कु. सुनीता कुमारी
टिहरी बाँध विरोध **और महिलाएं** 73
सुशीला
समसामायिक सामाजिक सन्दर्भ **तथा**
मैत्रेयी पुष्पा के हिन्दी **उपन्यास** 78
शालू
आधुनिक बिहार में राष्ट्रीय भावना प्रसार एवं **स्वतंत्रता आंदोलन में शैक्षणिक संस्थानों** की भूमिका......... 82
नीरज कुमार
आजादी के पहले आधुनिक भारत के **इतिहास लेखन में भारतीय इतिहासकार** की भूमिका 86
बिनोद रंजन
गोस्वामी तुलसीदास के **साहित्य में भक्ति दर्शन** . 91
शालू
गाँधीवाद के मुख्य **सिद्धांत** 93
दीपा गर्ग
ब्रह्मपुराण में पर्व 101
डॉ. गिरिधर गोपाल शर्मा
राष्ट्रीय जागरण का निनाद : झालरापाटन का साहित्यिक पत्र सौरभ **108**
डॉ. अर्चना द्विवेदी
Traces of Pāñcarātra System in the Mahabharata and Purana 112
Dr. *Bindia Trivedi*
तमिल भक्ति संप्रदाय का आविर्भाव और 750 ई. से 1200 ई. तक उनका **प्रसार : एक विवेचन**...... 115
रविशंकर प्रसाद
Religious Philosophy of Rudolf Otto 118
D,: Binod Prasad Singh
आऊवा : **राजस्थान में** 1857 की क्रान्ति 121
डॉ. प्रणव देव
मसाई समाज एवं **संस्कृति** **129**
डॉ. गजेन्द्र सिंह / उमेश कुमार
आधुनिक भारत **में अस्पृश्यता** : एक **अवलोकन**...... 133
लाजपत राय
भारतीय नवजागरण : **सांस्कृतिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य** ..:139
डॉ. सुनीता खुराना
आधुनिक भारत में दलित राजनीति 143
कुमारी सीमा
कृष्णा सोबती की **कहानियों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता** **146**
भव्या कुमारी
वैश्विक संस्कृति की चुनौतियाँ और मैथिलीशरण गुप्त का काव्य 150
डॉ. अनिल राय
विनोद कुमार शुक्ल के काव्य में मानवीय जीवन अध्ययन **160**
डॉ. शोभा कौर
नक्सलवाद के **उद्‌भव** एवं **विकास** की **ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**.............. 165
डॉ. प्रिंसी प्रिया राय
Manifestation of Materialism in the
Novels of John Braine (1922-86) and
the Post war Novels --------------------------- 170
Dr. Rajendra Prasad Singh

डॉ. अनिल राय*

वैश्विक संस्कृति की चुनौतियाँ और मैथिलीशरण गुप्त का काव्य

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जब उपनिवेशवाद **समाप्त हो गया** लगभग तभी **से एक नये प्रकार के** साम्राज्यवाद **का विकास होने** लगा। इस कडी में आज **का** वैश्वीकरण भी एक प्रकार **का नव** साम्राज्यवाद है। **मोटे तौर** पर विश्वव्यापी **आर्थिक** निवेशीकरण के द्वारा सम्पूर्ण विश्व के एकीकरण को वैश्वीकरण कहा जाता है। वर्तमान युग में अब कोई भी शक्तिशाली देश युद्ध अथवा सैन्यशक्ति द्वारा किसी देश पर प्रभुत्व स्थापित नहीं **करता, अपितु आर्थिक** प्रभुत्व स्थापित करना **ही उसका उद्देश्य हो चुका** है। इस **नव** साम्राज्यवाद **का केन्द्र इस बार यूरोप नहीं** बल्कि अमेरिका रहा। वैश्वीकरण **का** विचार मूलत: बहुराष्ट्रीय **निगमों का** लक्ष्य विचार है। इन **निगमों ने अपनी पूँजी,** तकनीक, **अपने ब्रांड आदि के** माध्यम **से** समाज में अभूतपूर्व परिवर्तन **लाने के साथ-साथ हमारी जीवन-शैली** में एक विकल्पहीन अनिवार्यता के रूप में स्वयं को स्थापित करने की आखिरी **कोशिश तक** की है। **हमारे** जीवन में चाहे-**अनचाहे** उनका इस प्रकार अनिवार्य हो जाना ही उनका 'वर्चस्ववाद' है। 'वर्चस्ववाद' **का यह** आक्रमण आज पारंपरिक सैन्यबल के **द्वारा नहीं** होता बल्कि जीवन-शैली को बन्धक बनाकर **किया जाता** है। **यह एक प्रकार का** सांस्कृतिक वर्चस्ववाद भी है जो अर्थ को केन्द्र में रखते हुए हमारी संस्कृति पर **पूरी तरह** आच्छादित होता **जा** रहा है। बहुराष्ट्रीय **निगम** सारे विश्व को एक बाजार **से अधिक कुछ नहीं** समझते। उनकी दृष्टि में मनुष्य मनुष्य न रहकर एक **उपभोक्ता** मात्र है। उसके अन्दर अदम्य भौतिक इच्छाएँ निर्मित करना इन **निगमों का** प्रथम लक्ष्य है और यह कार्य मीडिया के माध्यम **से बहुत** आसान **हो गया** है। मीडिया इन बहुराष्ट्रीय **निगमों का सबसे सशक्त हथियार** है। वर्तमान समय में शक्तिशाली **मीडिया-साम्राज्य ने हमारी** सांस्कृतिक अस्मिता की सुरक्षा एवं आत्मनिर्भरता पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगा **दिया** है। संसार के **जिन** देशों की अस्मिता अपनी **विविधता, वैचित्र्य** और सांस्कृतिक श्रेष्ठता के कारण **रही** है, आज के **वैश्विक परिवेश** में उनकी अस्मिता पर आये खतरे की **पहचान आसानी से** की **जा** सकती है।

आज विश्व के राजनैतिक परिदृश्य में सबसे बड़ा परिवर्तन यह आया है कि अब राष्ट्रों की सीमाएँ **समाप्त** होती **जा रही हैं, जिसके** qरिणामस्वरूq **मुक्त व्यापार** और मुक्ति बाजार निरंतर स्थापित हो **रहे हैं**। व्यक्ति और समाज की स्थापित **अवधारणाएँ मानव-विकास** की क्रांतिकारी उपलब्धियां हैं जो आज खतरे में पड़ गयी हैं। इस संस्कृति **का एक आशय यह** है कि अब सम्पूर्ण विश्व में एक ही संस्कृति होगी। सांस्कृतिक एकीकरण की इतनी बड़ी तानाशाही विश्व इतिहास में आज **तक पहले कभी नहीं देखी** गयी। अविकसित एवं विकासशील देशों में यह संस्कृति जिस व्यवस्था को जन्म दे **रही** है, वह समाज में भौतिक **व** दैहिक वासना को उद्दीप्त करने वाली है। यह सुनियोजित **व्यवस्था ग्रीवहत के** वजूद और उसके सम्मान पर एक बड़ा सवाल खड़ा **करती** है। वैश्वीकरण की संस्कृति के प्रभावस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में निम्नलिखित छ: परिवर्तन रेखांकित किये **जा सकते हैं** - 1. सैन्यीकरण, 2. हिंसा में **वृद्धि,** 3. यौन-संस्कृति **का** प्रसार, 4. साम्प्रदायिकता में

* एसोसिएट **प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, श्यामलाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

वृद्धि, 5. स्वदेशी के समक्ष **गंभीर संकट** 6. **अंग्रेजी भाषा-साम्राज्य का** विश्वव्यापी होना।

वैश्वीकरण ने समूची दुनिया में यह संदेश **देकर एक बहुत बड़ा भ्रमजाल फैलाया कि कोई** भी राष्ट्र इससे बच **नहीं सकता क्योंकि इसका कोई विकल्प नहीं** है। यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद राष्ट्रों की अस्मिता के समक्ष आज सबसे बड़ी चुनौती बनकर खड़ा है। इसमें **कोई संदेह नहीं** है **कि कई क्षेत्रों में इसने विकास के नये-नये अवसर प्रदान किये किन्तु इसने जिस प्रकार** की संवेदनहीन, यांत्रिक, देहवादी, बाजारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दिया उसके **परिणाम अत्यंत** विनाशकारी सिद्ध **हो रहे** हैं। ऐसे समय में साहित्य की भूमिका **का** मूल्यांकन **नितांत** आवश्यक **हो जाता** है। इतिहास की नजर **से** देखें **तो** यह साफ **हो जाता** है **कि राष्ट्र और समाज** को प्रतिकूल परिस्थितियों एवं विसंगतियों **से उबारने** में साहित्य ने सदैव **एक सशक्त भूमिका निभायी** है।

मैथिलीशरण गुप्त **का हिन्दी साहित्य में आगमन खड़ी** बोली के इतिहास के युगान्तरकारी परिवर्तन **का प्रतीक** है। **उनके काव्य** में भारतीय नवजागरण की अनुगूँज सर्वत्र विद्यमान है। गुप्ताजी ने **प्राचीन काव्य-रूढ़ियों** को युगानुकूल रूप देकर हीन **भावना से** ग्रस्त भारतीय जनमानस को झकझोरा **और उसमें एक नवीन चेतना संचरित** की। **वस्तुतः कोई** भी साहित्यकार **महान** तभी **बनता** है **जब** वह **परम्परा से जुड़कर नवीन दृष्टि साहित्य** में लाता है। परम्परा को पूरी **तरह से खारिज करके कोई** रचनाकार **महान नहीं** हो सकता। इस तथ्य को गुप्त जी कभी विस्मृत नहीं करते-

हम कौन थे, क्या हो **गये हैं, और क्या होंगे** अभी।
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।"[1]

गुप्तजी ने अपने काव्य में जगह-जगह **पर भारतीय** संस्कृति के अतीतकालीन उत्कर्ष के अनेक भव्यचित्र अंकित किये हैं, जिनमें उनकी सांस्कृतिक दृष्टि **साकार** हो **उठी** है। **अपनी प्रसिद्ध रचना 'भारत-भारती'** में **भारत के** अतीतकालीन समृद्धि **से वे राष्ट्र** को **अवगत** कराते हुए वर्तमान के प्रति **अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए कहते हैं-**

यद्यपि हताहत गात में कुछ साँस अब भी आ **रही,**
पर सोच पूर्वापर दशा, मुँह से निकलता है यही।
जिसकी अलौकिक **कीर्ति से उज्ज्वल हुई सारी मही,**
था जो जगत **का मुकुट, क्या हाय** यह भारत वही॥[2]

कवि की उपर्युक्त पंक्तियाँ वर्तमान परिवेश में भी **कम** प्रासंगिक नहीं हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में जिस **तरह अमेरिकी संस्कृति तीसरी दुनिया के** देशों **पर थोपी जा रही** है ऐसे में किसी भी राष्ट्र को **अपनी अस्मिता** की रक्षा के लिए अपने उज्ज्वल पक्षों को संभाल कर चलना होगा। हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीनतम **और सर्वश्रेष्ठ संस्कृति रही** है। इसी **से विश्व** में **भारत** की पहचान होती **रही** है-

हैं वायुमंडल में **हमारे गीत अब** भी गूँजते,
निर्झर, नदी, सागर, नगर, **गिरि** वन सभी **हैं, कूजते**।
देखो हमारा विश्व में **कोई नहीं उपमान था,**
नर-देव थे हम, **और भारत** देव-लोक समान था।[3]

मैथिलीशरण **गुप्त एक ऐसे कवि हैं जो वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लामी, हिन्दू, आंग्ल आदि** संस्कृतियों के कृत्रिम भेदोपभेद में **जाकर** किसी **एक का समर्थन** या विरोध नहीं करते, बल्कि **अपनी समन्वय-दृष्टि से मानवता के चरम** उत्कर्ष को **अपना लक्ष्य मानते** हैं। उनकी इस विशेषता **का संज्ञान हिंदी के** लगभग सभी श्रेष्ठ आलोचकों ने **लिया** है। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने इनके **विषय** में **लिखा** है- ''गुप्ताजी व्यापक संवेदना के रचनाकार हैं।.....आधुनिक **हिंदी काव्य** में वैष्णेव उदारता के **वे प्रतिनिधि** हैं। संकीर्णता की **गंध न उनके** व्यक्तित्व में **थी न कृतित्व** में।....**भारत** के प्राय: सभी धार्मिक मतों एवं विश्वासों **का समाहार** उनकी **काव्य भावना** में हो **गया** है।"[4]

मैथिलीशरण गुप्त जिस पुनरुत्थान-युग की सृष्टि **हैं,** उसमें सांस्कृतिक पुनर्जागरण **का** अर्थ जातीय अथवा **हिन्दू-जागरण से** भी जुड़ता है, किन्तु उनका हिन्दुत्व प्रतिहिंसा या कट्टरवादिता की **भावना से उद्दीप्त नहीं** है। बल्कि वह तो राष्ट्रीय **एकता के स्तम्भ पर टिका** हुआ है। **वे लिखते हैं-**

जाति धर्म **का** सम्प्रदाय **का, नहीं भेद** व्यवधान यहाँ।
राम रहीम, बुद्ध ईसा का, सुलभ एक सा ध्यान यहाँ।[5]

वैश्वीकरण के इस दौर में समस्त विश्व में साम्प्रदायिकता, हिंसा **और** आतंकवाद की प्रवृत्तियाँ बढ़ी हैं। हमारा देश भी इनसे अछूता नहीं है। आज हिंसा के **समक्ष बुद्ध और महावीर के देश** की बेबसी **और लाचारी स्पष्ट देखी जा** सकती है। गुप्तजी के ये पंक्तियाँ हमें हमारी **भूलों का बोध कराती हैं-**

जिसके लिए संसार **अपना** सर्वकाल ऋणी रहा,
उस धर्म की भी दुर्दशा हमने उठा रखी **न** हा

1

जो धर्म सुख का हेतु है, भव सिन्धु का जो सेतु है,
देखो, उसे हमने बनाया अब कलह का केतु है।[6]

गुप्त जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे तुलसीदास की तरह ही एक समन्वयवादी कवि हैं। भारत जैसे देश में वही साहित्यकार श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी हो सकता है जो इस दृष्टि से समृद्ध हो। रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में यदि कहें तो "गुप्तजी वास्तव में सामंजस्यावादी कवि हैं, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने वाले कवि नहीं। सब प्रकार की उच्चवता से प्रभावित होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है।"[7]

मैथिलीशरण गुप्त का सामाजिक आदर्श वर्णाश्रम धर्म है पर उसकी मध्ययुगीन जड़ता उन्हें स्वीकार्य नहीं है। अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा रखने के कारण ही वे वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करते थे, किन्तु आधुनिकता इस विचार को नहीं मानती। गुप्तजी ने समय की इस गति को भली-भाँति पहचान लिया था और तदनुरूप 'जय भारत' में लिखा भी- 'कुल से नहीं शील से ही तो होता है कोई जन आर्य'। अपनी रचना 'स्वदेश-संगीत' में भी उन्होंने यही विचार प्रकट किया है कि जन्म से कोई मनुष्य श्रेष्ठ नहीं है। श्रेष्ठता के लिए जो चीज सबसे अधिक अपेक्षित है वह है आचार-विचार और व्यवहार की शुद्धता-

शुद्धाचार, विचार चाहिए और सत्य व्यवहार,
धारण करो साधुता, लेगा पदरज तक संसार।[8]

समाज की लघु संस्था परिवार है। किसी भी समाज की समुन्नति पारिवारिक जीवन की सुख-समृद्धि पर निर्भर करती है। आधुनिक 4नोविज्ञान बालकों के चरित्र-निर्माण एवं चरित्र-उन्नयन के लिए सम्मिलित परिवार की आवश्यकता पर बल देता है। मैथिलीशरण गुप्त अपने युग की आवश्याकताओं के प्रति पूरी तरह सचेत हैं अंत: उन्होंने अपने काव्य में जिस आदर्श समाज की कल्पना की है, वह भारतीय संस्कृति की संयुक्त परिवार-प्रणाली का जीता-जागता उदाहरण है। दुर्भाग्य से हमारे समाज में सम्मिलित परिवार की प्रथा अब पूरी तरह समाप्त होती जा रही है। पारिवारिक मूल्यों के निरंतर क्षरण की समस्या आज भयावह रूप ले चुकी है। गुप्तजी ने 'भारत-भारती' में कुवैचारिक व अनुदारताजन्य इस प्रवृत्ति पर गहरा क्षोभ प्रकट किया है-

इस गृह-कलह से ही कि जिसकी नींव है अविचार की।
निन्दित कदाचित् है, प्रथा अब सम्मिलित परिवार की।[9]

वैश्विक परिवेश में राष्ट्र, समाज, परिवार और व्यक्ति सभी बाजारवाद के शिकार हुए हैं। अमेरिकी संस्कृति का हमारे परिवारों पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। हम देख सकते हैं कि परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार में रहते हुए भी नितान्त अकेला और अजनबी है। उसकी संवदेना खंडित होती जा रही हैं। युवाओं का अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पाश्चात्य जीवन-शैली के पीछे बेतहाशा भागना चिंता में डालने वाला है। बाजारवाद की इस अंधी दौड़ के परिणामस्वरूप शहरों में एक खास तरह की उपसंस्कृति पनप रही है। पारिवारिक सम्बन्धों में जो एक सहजता होनी चाहिए उसमें निरन्तर हो रही कमी को आज सर्वत्र देखा जा सकता है। परिवार धीरे-धीरे क्लब की शक्ल लेते जा रहे हैं। पारिवारिक सम्बंधों में भावनात्मकता के स्थाप पर कृत्रिमता और यान्त्रिकता का घर करते जाना भारतीयता पर आज सबसे बड़ा संकट है। इस प्रकार वैश्वीकरण के द्वारा परोसी गयी यह संस्कृति हमारे समाज के लिए एक गंभीर समस्या बन चुकी है। अब समाज में पारिवारिक मूल्यों के विघटन का वह दौर शुरू हो गया है जब भारत जैसे देश में भी बुजुर्गों के लिए 'ओल्ड एज होम' जैसी संस्थाएँ खोलनी पड़ रही हैं। जीवन के जिस मोड़ पर व्यक्ति सबसे अधिक अकेला और कमजोर होता है उसे परिवार से निकलकर अलग-थलग करं देने से अधिक अ4ानवीयता और क्या हो सकती है? हम सभ्यता और विकास के किस दौर में आ गये हैं? इस समस्या का समाधान यदि तलाशन1 हो तो हमें अपने साहित्य और संस्कृति को एक बार पुन: खँगालना होगा। आज उनके पुनीत पक्ष को पुन: स्थापित कर विपरीत परिस्थितियों से टकराने हेतु शक्ति अर्जित करनी होगी।

भारतीय समाज का मूल आधार परिवार रहा है। 'साकेत' में गुप्तजी का मुख्य उद्देश्य सुखमय, आदर्श, व मर्यादाशील परिवार की स्थापना रहा है। तुलसीदास की तरह ही उनके समक्ष भी 'साकेत' के रघुकुल का आदर्श था। इसलिए वर्तमान पारिवारिक दशा पर उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। यही कारण है कि पारिवारिक मूल्यों के क्षरण की चिंता से वे बराबर जूझते रहे। प्रसिद्ध आलोचक विश्वानाथ त्रिपाठी मैथिलीशरण गुप्त की पारिवारिकता को उनके काव्य की केंद्रीय संवेदना कहते हुए लिखते हैं-

"गुप्तजी की कृतियों में पारिवारिकता केंद्रीय संवेदना के रूप में उभरती है।"10 समकालीन समाज में अर्थ-लिप्सा के कारण दो सहोदर भाइयों में भी कलह होते देर नहीं लगती। इस यथार्थजन्य पीड़ा की अभिव्यक्ति गुप्तजी ने 'भारत-भारती' में इस प्रकार की है-

ईर्ष्या हमारे चित्त से, क्षण मात्र भी हटती नहीं।
दो भाइयों में भी परस्पर, अब यहाँ पटती नहीं।[11]

मैथिलीशरण गुप्त की आदर्श परिवार की स्थापना वर्तमान सामाजिक पारिवारिक संकट से उबरने के लिए प्रेरणास्रोत बन सकती है। 'हिन्दी-साहित्य : उद्भव और विकास' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं-"भारतवर्ष के सभी मर्यादाप्रेमी कवि परिवार के कवि रहे हैं। गुप्तजी में यह परम्परा पूरी मात्रा में उतरी है। ... सब मिलाकर मैथिलीशरण गुप्त ने सम्पूर्ण भारतीय पारिवारिक वातावरण में उदात्त चरित्रों का निर्माण किया है। उनके काव्य शुरू से अन्त तक प्रेरणा देने वाले हैं।"[12]

वैश्वीकरण का सबसे सशक्त हथियार मीडिया है। परिवार और व्यक्ति की अवधारणा छोटे पर्दे पर दिखायी जा रही छवियों के कारण पूरी तरह बदली है। बच्चों में जहाँ पारिवारिक मूल्यों के प्रति असम्मान की भावना बढ़ी है, वहीं सीधे-सादे समाज में भी दिखावे व उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति घर कर गयी है। बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद की अंधी संस्कृति ने आज हमें हिंसक और यौन-अपराधों से लबरेज वेब-सीरीज के उस सांस्कृतिक युग में पहुँचा दिया है, जहाँ स्त्री और उसके शरीर की पूरी अवधारणा बदल चुकी है। टीवी के ऐसे चैनलों की भरमार हो गयी है, जहाँ पर स्त्री और उसके शरीर की नग्नता एवं कामुकता को व्यंजन की तरह परोसा जा रहा है। इन उत्तेजक दृश्यों को जाने-अनजाने हमारा पूरा समाज देख रहा है जिसके कारण बच्चों और किशोरों में एक प्रकार की विकृत मानसिकता विकसित होती जा रही है। कहने की आवश्यश्कता नहीं है कि मैथिलीशरण गुप्त नारी को उपभोग्या नहीं समझते। नारी विषयक सामाजिक क्रांति का उद्घोष करती हुई 'द्वापर' की विधृता के कथन में गुप्तजी की नारी-भावना साकार हो उठी है। वह समाज के उस वर्ग पर प्रहार करती है जो स्त्री को वासना-पूर्ति का साधन मात्र समझता है-

हाय, वधू ने क्या कर विषयक एक वासना पायी?
नहीं और कोई क्या उसका पिता-पुत्र या भाई?
नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आयी?
माँ बेटी या बहिन हाय क्या संग नहीं वह लायी?[13]

स्पष्ट है कि गुप्तजी की नारी केवल कामिनी नहीं है। वे उसे माँ, बेटी, जीवनसंगिनी और अर्द्धांगिनी मानते हैं। उनकी दृष्टि में पुरुष-नारी एक दूसरे के पूरक हैं। अर्द्धनारीश्वर की पारंपरिक परिकल्पना का समर्थन करते हुए गुप्तजी स्त्री और पुरुष के राधा-कृष्ण की भाँति पूर्णान्वित होने में ही जीवन-साधना की परिपूर्णता देखते हैं-

यह क्या, यह क्या, भ्रम या विभ्रम, दर्शन नहीं अधूरे।
एक मूर्ति आधे में राधा, आधे में हरि पूरे[14]

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी को केवल आदर्श माता, आदर्श पत्नी और आदर्श वधू के रूप में ही चित्रित नहीं किया गया है, बल्कि भारतीय नवजागरण एवं स्वाधीनता-आंदोलन के आलोक में उसे सजग, कर्मशील तथा राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न शक्ति के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। गुप्तजी के काव्य की शकुंतला, कैकेयी, सीता, मांडवी, उर्मिला यशोदा, विधृता, राधा, कुन्ती, द्रौपदी, यशोधरा आदि उनकी अविस्मरणीय चरित्र-सृष्टियाँ हैं। ये नारियाँ न तो पूज्य हैं और न ही दासी, अपितु ये पुरुष की सहभागिनी, सहयोगिनी व सहधार्मिणी हैं, और यही दृष्टिकोण किसी भी समाज की उन्नति का आधार होता है।

गुप्तजी ने अपनी रचनाओं में व्यक्ति निरपेक्ष समाज या समाजनिरपेक्ष व्यक्ति की कल्पना नहीं की है। वे व्यक्ति और समाज को अभिन्न समझते हैं। व्यक्ति अपना विकास स्वयं तो करता है, पर उसकी चरम सार्थकता समाज के प्रति समर्पण में है। खास बात यह है कि गुप्तजी की चिन्तनधारा जड़ न होकर निरंतर गतिशील है। वे न तो पुरातनवादी हैं, और न ही विशुद्ध नवीनतावादी। इसीलिए उनके काव्य में शक्ति और समाज का उचित सन्तुलन दर्शनीय है। भारतीय संस्कृति में त्याग को मानव-जीवन की विभूति के रूप में स्थापित किया गया है। यहाँ भोग के त्याग के साथ सुख की चरम परिणति को जोड़कर देखा गया है, और कर्त्तव्य-साधना को त्याग का साधन माना गया है। गुप्तजी का मानव चरित्रोत्कर्ष द्वारा देवत्व को प्राप्त कर सकता है पर उसकी सार्थकता लोक-संग्रह में ही चरितार्थ होती है।

समाज में जहाँ भोगवादी प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है, वहीं मनुष्य के हृदय से त्याग, प्रेम और करुणा के भाव भी उसी अनुपात में लुप्त होते जा रहे हैं। वर्तमान युग में

वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ भौतिक समृद्धि एवं वैभव-विलास भी अपने चरम पर है। भारतीय संस्कृति में भौतिक समृद्धि एवं वैभव-विलास को अपेक्षित मानते हुए भी उनके अनियन्त्रित भोग को प्रश्रय नहीं दिया गया है। आत्मनिग्रह सभी व्यवस्थाओं में अनिवार्य है। इसीलिए गुप्तजी की काव्य-दृष्टि में न तो पूँजीवादी सभ्यता से उपजे एकान्तिक व्यक्तिवाद का प्रसार है, और न ही प्रगतिवादी वर्ग-चेतना की उपज भौतिक समाजवाद का विस्तार। यही कारण है कि वे भारतीयों को भोग में भी योग करने का संदेश देते हैं। इसी के प्रभावस्वरूप 'साकेत' की उर्मिला लंका-विजय के पश्चात् रामसेना को लंका से स्वर्ण-धन न लेने का परामर्श देती है-

गरज उठी वह- ''नहीं, पापी का सोना,
यहाँ न लाना भले सिंधु में वहीं डुबोना,
सावधान वह अधम धान्य सा धन् मत छूना,
तुम्हें तुम्हारी मातृभूति ही देगी दूना।[15]

अपरिग्रह के समान ही पतिव्रत और एक पत्नीव्रत धर्म में मैथिलीशरण गुप्त के सभी सुपात्रों की अचल निष्ठा है। स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्य को समभाव से देखते हुए 'पंचवटी' के लक्ष्मण कहते हैं-

नारी के जिस भव्य रूप का साभिमान भाषी हूँ मैं,
उसे नरों में भी पाने का उत्सुक अभिलाषी हूँ मैं।[16]

नैतिक आदर्शों के प्रति दृढ़ आस्थावान होने के कारण 'साकेत' के राम, सीता, लक्ष्मण वन को ही राजभवन बना लेते हैं, और भरत राजभवन को तपोवन। राम का एकमात्र लक्ष्य सम्पूर्ण विश्व को बन्धुत्व-भावना की अनुभूति कराना है। उनकी इच्छा है कि विविध संतापों में सन्तप्त भूतल स्वर्गीय आभा से परिपूरित हो। यहाँ विरहाग्नि में जलती हुई उर्मिला को आत्मरोदन तक ही नहीं दिखाया गया है, अपितु उसे वियोगजन्य अश्रुओं में डूबी होने पर भी विविध रूपों में मानवता कल्याण के प्रति सचेष्ट रूप में प्रकट किया गया है। राम द्वारा कोल, भील, किरातों के प्रति अपनत्व की भावना, विभीषण द्वारा रावण जैसे आततायी से कल्याण कामना और अनेक स्थलों पर गाँधीवादी आदर्शों के निरूपण में उनकी लोकपरक दृष्टि एवं उसमें अंतर्निहित विश्वबंधुत्व की भावना का परिचय होता है।

आज के जीवन में यान्त्रिकता व अर्थवादिता का अधिक से अधिक समावेश होने के कारण मनुष्य की संवेदना लगातार मर रही है। मैथिलीशरण गुप्ता ने जिस मानवता के सिद्धान्त को अपने काव्य में प्रतिपादित किया है, वह हमारा अनुभूत दर्शन है जो बुद्ध और ईसा से प्राप्त हुआ है। उसमें मानव कल्याण की प्रतिष्ठा है, किन्तु उस कल्याण का जो स्वरूप है, वह स्थूल भोगों की आराधना के लिए नहीं है। वह करुणा, दया, संयम, तप, सेवा परोपकार आदि की उदात्त के लिए है, जो लोक सवंर्द्धन के मान्य तत्त्व हैं। गुप्तजी के विचार में मनुष्य और समाज के बीच संघर्ष नहीं है, बल्कि व्यष्टि और समष्टि दोनों का समन्वय है। अर्थात् नर और नारायण दोनों का शाश्वत सख्य-भाव है। अपने कर्मप्रधान भूतल को देवों के स्वर्ग से भी बढ़कर मानता हुआ कवि उसकी वन्दना करता है, और 'साकेत' के राम कहलवाता है-

''भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।[17]

वस्तुतः वैश्वीकरण एक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक प्रक्रिया है। यह हमारे जीवन व अनुभव का अनिवार्य हिस्सा बनता जा रहा है। इसलिए इसे केवल एक 'षड्यंत्र' समझकर इसे पूर्ण रूप से अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। सूचना तकनीकी क्रांति जो इसका दाहिना हाथ है, के द्वारा हमारे समाज में स्त्रियों एवं दलितों की आवाज बुलन्द हुई है। इसने मानव-सभ्यता को उसके विकास के चरम तक पहुँचा दिया है। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि हमारी आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। तकनीकी विकास ने इन क्षेत्रों में भी अभूतपूर्व प्रगति की है, जो निश्चित रूप से मानव-सभ्यता के विकास की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं।

हम भारतीयों की एक बड़ी त्रासदी यह है कि पश्चिम के गुण-दोषों का आकलन किये बिना ही हम उनका अंधानुकरण करने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके गुणों को तो हम छोड़ देते हैं, और जो बुराइयाँ हैं उनकी नकल करके स्वयं को उनके समकक्ष समझने लगते हैं, जो बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। हमारी इस प्रवृत्ति की पहचान मैथिलीशरण गुप्त को भी है-

केवल विदेशी वस्तु ही क्यों, अब स्वदेशी हैं कहाँ?
वह वेशभूषा और भाषा, सब विदेशी हैं यहाँ।
गुण मात्र छोड़, विदेशियों के हम उन्हीं में सन गये,
कैसी नकल की, वाह हम नक्काल पूरे बन गये।[18]

भारत की आध्यात्मिक और पश्चिम की भौतिक संस्कृतियों के संतुलित समन्वय में ही मैथिलीशरण गुप्त को विश्व मानवता का आदर्श प्राप्त हुआ। पश्चिम की वैज्ञानिक एवं भौतिकतावादी संस्कृति को पूरी तरह नकार देना अथवा उसका अंधानुकरण दोनों ही अतिवादी स्थितियां हैं। हमें इनके मध्य संतुलन बनाकर चलना होगा। इस विषय में गुप्तजी की निम्नलिखित पंक्तियां भ्रमित भारतीयों का पथ प्रशस्त करती हुई दिखायी पड़ती हैं-

उनकी सी साधना रहे, अपनी आराधना रहे।
उनका अथक परिश्रम हो, पर उसमें अपना क्रम हो।
उनका प्रेय, श्रेय अपना, उनका ज्ञेय, ध्येय अपना।
उनकी गति, पद्धति अपनी, उनकी उन्नति, मति अपनी।
उनका सा उद्योग करो, किन्तु भोग, में योग करो।[19]

समग्रतः वर्तमान परिदृश्य में हमें वैश्वीकरण के शुभ-अशुभ पक्षों की गम्भीर एवं ईमानदार समीक्षा करनी होगी। इसके शुभ पक्ष जहाँ हमारे जीवन में अनेक अवसरों एवं संभावनाओं के द्वार खोलते हैं, वहीं इसके अशुभ पक्ष मानव से उसकी संवेदना तक छीन रहे हैं। इससे उत्पन्न विकृतियों एवं विषमताओं से टकराने के लिए एक बार फिर से साहित्य को एक सशक्त प्रतिपक्ष की भूमिका में आना होगा, और उसे दर्शाना होगा कि जीवन और समाज में जो कुछ हो रहा है वह पूरी तरह ठीक नहीं है। उसके और भी विकल्प हैं जो हमारी उन्नति के लिए सहायक हो सकते हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने जिस प्रभावशाली ढंग से एक जिम्मेदार साहित्यिक की भूमिका निभायी वह कालातीत है। उनका साहित्यिक योगदान कालजयी और अक्षुण्ण रहेगा।

सन्दर्भ सूची

1. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2003, पृष्ठ-4 ।
2. वही, पृष्ठ-85 ।
3. वही, पृष्ठ-27 ।
4. विश्वीनाथ त्रिपाठी, हिन्दीं साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2007, पृष्ठ-104।
5. मैथिलीशरण गुप्त, मंगलघट, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 1994, पृष्ठ-262-263 ।
6. मैथिलीशरंण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2003, पृष्ठ-126 ।
7. रामचन्द्र शुक्ला, हिन्दी, साहित्यन का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2011, पृष्ठ-492 ।
8. मैथिलीशरण गुप्त, स्वदेश-संगीत, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2003, पृष्ठ-107 ।
9. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2003, पृष्ठ-146 ।
10. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्यि का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, 2007, पृष्ठ-106 ।
11. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्यि सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2003, पृष्ठ-146 ।
12. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, 1990, पृष्ठ-232 ।
13. मैथिलीशरण गुप्त, द्वापर, साहित्यि सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2021, पृष्ठ-35 ।
14. वही, पृष्ठ-203 ।
15. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2005, पृष्ठ-313 ।
16. मैथिलीशरण गुप्त, पंचवटी, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 1982, पृष्ठ-30 ।
17. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2005, पृष्ठ-167 ।
18. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्यि सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 2003, पृष्ठ-103 ।
19. मैथिलीशरण गुप्त, वैतालिक, साहित्य सदन चिरगांव, झाँसी, वि. 1984, पृष्ठ-31-32 1